IJAER/January-February-2025/Volume-14/Issue-1 ISSN: 2278-9677
International Journal of Arts & Education Research
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) Impact Factor:7.06

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

बृहस्पतु सिंह विशाल

सहायक प्राध्यापक हिंदी , चंद्रपाल डड़सेना शासकीय महाविद्यालय पिथौरा, जिला महासमुंद (छ. ग.)

पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़

सार

यह अध्ययन हिंदी साहित्य में दलित विमर्श की पड़ताल करता है, यह जांचता है कि यह समय के साथ कैसे विकसित हुआ है और यह किस तरह से भारत में दलितों की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक वास्तविकताओं को दर्शाता है। दलित साहित्य, जो प्रतिरोध और पहचान के दावे के रूप में उभरा, जाति-आधारित उत्पीड़न और हाशिए पर होने के खिलाफ लड़ाई में एक शक्तिशाली उपकरण रहा है। शोध प्रमुख दलित लेखकों, जैसे भक्त कवि, बी.आर. अंबेडकर और दया पवार, ओमप्रकाश वाल्मीकि और अन्य जैसे आधुनिक लेखकों के योगदान पर गहराई से चर्चा करता है। अध्ययन दलित साहित्य के शैलीगत और विषयगत तत्वों की भी जांच करता है, जिसमें जातिगत भेदभाव, सामाजिक अन्याय और समानता के आह्वान पर जोर दिया गया है। इसके अलावा, यह अध्ययन दलित साहित्य में भाषा के महत्व का विश्लेषण करता है, दलितों के संघर्षों और आकांक्षाओं को आवाज देने के लिए एक माध्यम के रूप में हिंदी के उपयोग पर ध्यान केंद्रित करता है। प्रमुख कार्यों की जांच करके, अध्ययन से पता चलता है कि कैसे दलित साहित्य धीरे-धीरे विरोध के एक रूप से एक साहित्यिक आंदोलन में बदल गया है जो मुख्यधारा के समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंडों को फिर से परिभाषित करना चाहता है। इस अध्ययन का उद्देश्य इस बात की गहन समझ प्रदान करना है कि हिंदी में दलित साहित्य किस तरह वर्चस्ववादी विचारधाराओं को चुनौती देता है, सामाजिक परिवर्तन को बढ़ावा देता है, तथा दलित जीवन के अपने ईमानदार और बेबाक चित्रण के माध्यम से भारतीय समाज की कहानी को नया रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह शोधपत्र समकालीन हिंदी साहित्य पर दलित साहित्य के प्रभाव, साहित्यिक कैनन के भीतर इसके स्थान और भारत में सामाजिक न्याय और समानता के लिए चल रहे संघर्ष में इसकी निरंतर प्रासंगिकता पर भी विचार करता है।

मुख्य शब्दः *हिंदी साहित्य, दलित, विमर्श*

परिचयः

हिंदी साहित्य में दलित विमर्श भारतीय साहित्यिक परंपरा के एक महत्वपूर्ण और परिवर्तनकारी पहलू का प्रतिनिधित्व करता है, जो देश के सबसे हाशिए पर पड़े समुदायों में से एक को एक शक्तिशाली आवाज़ प्रदान करता है। "दलित" शब्द उन लोगों को दर्शाता है जो निचली जातियों से संबंधित हैं, जिन्हें ऐतिहासिक रूप से "अछूत" कहा जाता है, और जिन्होंने सदियों से प्रणालीगत बहिष्कार, भेदभाव और सामाजिक अन्याय का सामना किया है। हिंदी में दलित साहित्य का उदय 20वीं सदी की शुरुआत में देखा जा सकता है, जब इसकी शुरुआत गहरी जड़ें जमाए हुए जाति-आधारित उत्पीड़न की प्रतिक्रिया के रूप में हुई थी, जिसने दलित लेखकों को अपने जीवन के अनुभवों को बयान करने और सम्मान, अधिकारों और सामाजिक न्याय के लिए अपने संघर्षों को व्यक्त करने का एक साधन प्रदान किया। दलित साहित्य अपनी विषयगत चिंताओं में विशिष्ट है, क्योंकि यह जड़ जमाए हुए जाति व्यवस्था की आलोचना करता है, अस्पृश्यता की हिंसक वास्तविकताओं को उजागर करता है, और असमानता को बनाए रखने वाले सामाजिक मानदंडों

को चुनौती देता है। बी.आर. अंबेडकर जैसे लेखक, जो न केवल एक समाज सुधारक थे, बल्कि दलित बौद्धिक आंदोलन को आकार देने में एक प्रमुख व्यक्ति भी थे, उन्होंने लेखकों की पीढ़ियों को अपनी आवाज़ वापस पाने के लिए प्रेरित किया। दया पवार, ओमप्रकाश वाल्मीकि और कई अन्य लेखकों के साहित्यिक योगदान ने इस विमर्श को और समृद्ध किया है, जिसमें दलितों द्वारा सामना किए जाने वाले शोषण और अलगाव पर व्यक्तिगत आख्यानों को व्यापक सामाजिक टिप्पणियों के साथ जोड़ा गया है। यह अध्ययन दलित विमर्श को सुगम बनाने में हिंदी साहित्य की भूमिका की जांच करना चाहता है, जिसमें इस साहित्यिक आंदोलन के विषयों, भाषा और सांस्कृतिक निहितार्थों के विकास पर विशेष ध्यान दिया गया है। इसका उद्देश्य यह भी समझना है कि हिंदी में दलित साहित्य किस तरह प्रतिरोध के रूप में और सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में कार्य करता है। ऐसा करते हुए, यह शोधपत्र उन तरीकों की खोज करेगा जिसमें दलित साहित्य ने भारतीय समाज में दलित आवाज़ों के हाशिए पर होने का सामना करते हुए मुख्यधारा के साहित्यिक सिद्धांत को नया रूप दिया है। साहित्यिक मुख्यधारा में दलित दृष्टिकोणों का परिचय पारंपरिक आख्यानों को चुनौती देता है, जाति पदानुक्रम की बाधाओं से मुक्त होने और सामाजिक व्यवस्था के निचले स्तर पर रहने वालों की जीवित वास्तविकताओं को उजागर करने का प्रयास करता है। यह शोध प्रमुख दलित लेखकों के योगदान, उनकी अनूठी साहित्यिक शैलियों और उनके द्वारा लिखे गए सामाजिक-राजनीतिक संदर्भों की जांच करेगा, साथ ही भारत में सामाजिक न्याय, समानता और मानवाधिकारों की समकालीन चर्चाओं में दलित साहित्य की निरंतर प्रासंगिकता पर भी विचार करेगा।

दलित शब्द का अर्थ एवं परिभाषा

प्रायः अंग्रेजी, संस्कृत और हिन्दी शब्दकोशों में दलित शब्द का अर्थ मिलता है। हिन्दी शब्दकोश में दलित शब्द का अर्थ 'पददलित' 'दबाए हुए सताए हुए है। अंग्रेजी में इसे 'डिप्रेसड', कहा जाता है। मराठी भाषा में इसे 'विनिष्ट' किया हुआ' कहते हैं ।

भारत में हिन्दु वर्ण व्यवस्था के चार सोपान है। जो हैं — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र । प्राचीनकाल से ये वर्ण व्यवस्था चली आ रही है। इस वर्ण व्यवस्था से ही जाति व्यवस्था निकली है । ये वर्ण व्यवस्था कर्म के आधार पर बनी है। शूद्र वर्ण सबसे उपेक्षित और निम्न वर्ण माना गया है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में ब्राह्मण की उत्पति ब्रह्मा के मुख से, क्षत्रिय की बाहु से, वैश्य की जंघा से और शूद्र की पैरों से स्वीकार की गई है ।

ब्रह्मणोडस्य मुखमासीद बाहु राजन्य कृतः

उरू तदस्थ यद् वैश्य पदोभयाम् शूद्रो अजायत ।

हरदेव बाहरी ने दलित की परिभाषा देते हुए लिखा है, "दलित का अर्थ कुचला हुआ, दबाया हुआ, नष्ट किया हुआ ।"

भोलानाथ तिवारी ने 'दलित' का अर्थ बताते हुए लिखा है "दलित अर्थात कुचना हुआ, मसला हुआ, रौंदा हुआ, पस्तहिम्मत, हतोत्साहित, अछूत, जनजाति, डिप्रेसड क्लास महाराष्ट्र शब्दकोश के अनुसार दलित से अभिप्राय है, "हल्की जात, वर्ण, डिप्रेस्ड क्लासेस |

दलित शब्द का अर्थ किसी जाति विशेष से नहीं है और न ही हरिजन का पर्याय है बल्कि यह तो सभी दलित-पिछड़ी, जातियों-उपजातियों को समाहित करता है। संत साहित्य में संतो के लिए 'हरिजन' शब्द प्रयोग हुआ है। दलित और वंचित नए शब्द है जो आजकल अधिक व्यवहार में आ रहे है। कुछ वर्षों से पहले एक शासन आदेश द्वारा दलितों के लिए 'हरिजन' शब्द के प्रयोग पर प्रतिबंध लगा दिया था और इसके लिए पर्याप्त औचित्य भी है।

वास्तव में दलित वह समाज है, जिसे भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया है। कंवल भारती ने दलित की परिभाषा देते हुए कहा है। "वास्तव में दलित वही व्यक्ति हो सकता है, जो सामाजिक तथा आर्थिक दोनों दृष्टियों से दीन-हीन है। इससे भिन्न अर्थों में 'दलित' शब्द को लेना 'दलित' शब्द का ही विकृतिकरण करना है। जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गन्दे कर्म करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और सिर्फ वही दलित है ।"

दलित साहित्य जन साहित्य है । इसे मास लिटरेचर कहा जा सकता है। यह साहित्य का लिटरेचर ऑफ एक्शन भी है। यह मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामंती मानसिकता के विरूद्ध आक्रोशजनित संघर्ष और विद्रोह से उपजा है। उसका स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार किया जाना चाहिए। उसके सामाजिक अस्तित्व की धारणा समता, स्वतंत्रता और विश्वबंधुत्व के प्रति निष्ठा निर्धारित होनी चाहिए । यही दलित साहित्य का आग्रह है । दलित साहित्य मूलतः प्रश्नसूचक है। दलित साहित्य की जितनी भी परिभाषाएँ हैं उनका एक मात्र स्वर सामाजिक परिवर्तन है, जिसका प्रेरणास्त्रोत डॉ० बाबा साहब भीमराव अंबेडकर का विचार है। डॉ० भीमराव अंबेडकर दलितों के मसीहा और मार्गदाता माने जाते है। इनके मार्ग का अनुसरण करके जो साहित्य लिखा जा रहा है, वही दलित साहित्य है। दलित साहित्य की वेदना 'मैं की वेदना नहीं बल्कि पूरे समाज की वेदना है। महात्मा ज्योतिबा राव फुले ने कहा है, "गुलामी की यातना को जो जानता है, वही जानता है और जो जानता है वही पूरा सच कह पाता है। सचमुच "राख ही जानती है जलने का अनुभव और कोई नहीं ।"

हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य का प्रादुर्भाव

आधुनिक शब्दों में साहित्य समाज का अल्ट्रासाउण्ड है। सामाजिक मुद्दों को उजागर करना साहित्य का ही काम है। लोक कल्याण और लोकमंगल साहित्य की पुरानी परिभाषा है । दलित साहित्य उतना ही प्राचीन है, जितना हिन्दी साहित्य । यह बात दूसरी है। दलित साहित्य का डंका आजादी के बाद बजा और दलित चेतना का स्वर तो आदिकाल से ही मुखर हो गया था। कंवल भारती का कहना है, "हिन्दी दलित साहित्य ने मुख्य ऊर्जा और चेतना डॉ० अम्बेडकर के दर्शन से प्राप्त होती है। लेकिन डॉ० अम्बेडकर उसके जनक नहीं हैं। हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना हिन्दी साहित्य का इतिहास| सिद्ध कवियों और गोरखनाथ की वर्ण व्यवस्था विरोधी मध्यकालीन दलित सन्तों में क्रान्ति रूप में प्रस्फुटित हुई, जिसकी समान्तर चिंतनधारा की परम्परा का विकास ही हिन्दी दलित कविता का मूर्त रूप है। उन्नीस सौ के दशकों में उतर प्रदेश में हिन्दी दलित कविता स्वामी अछूतानन्द के आदि हिन्दी आंदोलन का अंग बनी और शंकरानन्द जैसे कई अच्छे कवि इस आन्दोलन ने दिये।

मुद्राराक्षस ने हिन्दी साहित्य में दलित साहित्स के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में कहा है, "हिन्दी में दलित रचनात्मक लेखन का इतिहास ज्यादा लम्बा नहीं है। बीसवीं सदी के उतरार्ध में दलित लेखक हिन्दी में सामने आये लेकिन उनकी उपस्थिति न तो कविता में दर्ज हुई और न ही कथा रचना में। बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में दलित प्रश्न एक केन्द्रीय मुद्दे के रूप में सामने आया । 11 भारतीय समाज का एक बड़ा हिस्सा जो अनेक वर्षों से दूसरों की गुलामी करता आया, उसे

बाबा साहब डॉ० भीमराव अम्बेडकर के प्रयत्नों से स्वतंत्र भारत में मौलिक अधिकार प्राप्त हुए, जिससे उनके रहन-सहन, सोच-विचार और चिन्तन प्रणाली में परिवर्तन आया।

दलित विमर्श और हिन्दी साहित्य

दलित साहित्य स्वानुभूति और सहानुभूति का साहित्य है । स्वानुभूति तो सिर्फ उस व्यक्ति को ही हो सकता है जो दलित समाज में पैदा हुआ और सहानुभूति किसी के भी हृद्य में पैदा हो सकती है। इसके लिए दलित समाज में पैदा होना जरूरी नहीं है। सहानुभूति किसी को भी पिघला सकती है। लेकिन स्वानुभूति तो सिर्फ उसी व्यक्ति को हो सकती है जो शूद्र वर्ण में पैदा होता है। साहित्य में किसी को भी अपने विचार अभिव्यक्त करने से रोका नहीं जा सकता । साहित्यकार किसी भी धर्म पर, जाति पर, मुल्क पर लिख सकता है। प्रेमचन्द के कथा साहित्य में 'दलित विमर्श' पर विचार करते हुए सुभाष चन्द्र ने लिखा है कि प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में समाज की वास्तविकता को जिस कुशलता के साथ अभिव्यक्त किया है वह भारत के हिन्द रचनाकारों के लिए आदर्श है। समाज के सभी वर्गों के चित्र मुंशी प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में उकेरे है। प्रेमचन्द की रचनाओं में दलितों के प्रति सहानुभूति, करूणा एवं संवेदना के साथ शोषण, अन्याय, उत्पीड़न से मुक्ति और मानवीय गरिमा व पहचान के लिए संघर्ष को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। प्रेमचन्द के उपन्यास कर्मभूमि, रंगभूमि, गोदान तथा कहानियाँ मंदिर, दूध का दाम, गुल्ली-डंडा, मंत्र, ठाकुर का कुआं, सद्गति आदि कहानियाँ दलित जीवन के विविध पक्ष तथा चित्र अभिव्यक्त करती है। दलित साहित्य सामाजिक यथार्थ के आधार पर खड़ा है। अतः आलोचना के सामाजिक यथार्थ के महत्व को स्थापित करते हुए हिन्दी दलित साहित्य के प्रमुख साहित्यकार एवं विद्वान आलोचक ओमप्रकाश बाल्मिकी कहते हैं "सौंदर्यशास्त्र की विवेचना में 'सौंदर्य', 'कल्पना', 'बिम्ब' और 'प्रतीक' को प्रमुख माना है विद्वानों ने, जबकि सौंदर्य के लिए सामाजिक यथार्थ एक विशिष्ट घटक है। कल्पना और आदर्श की नींव पर खड़े साहित्य को ओमप्रकाश बाल्मिकि अप्रासंगिक मानते हैं। दलित साहित्य का जन्म सामाजिक यथार्थ के कारण ही हुआ हैं हिन्दी दलित साहित्य के आलोचकों में डॉ० धर्मवीर, ओमप्रकाश बाल्मिकि, कंवल भारती, जय प्रकाश कर्दम, डॉ० एन० सिंह, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, तेज सिंह, श्यौजराज सिंह, मोहनदास नैमिशराय, बेचैन, डॉ० कुसुम मेघवाल आदि ने हिन्दी की कई महत्वपूर्ण रचनाओं की समीक्षा की। ओमप्रकाश बाल्मिकि कृत 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र तथा तेजसिंह कृत 'आज का दलित साहित्य विशेष उल्लेखनीय है । 'दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र में ओमप्रकाश बाल्मिकि ने दलित साहित्य के सौंदर्यशास्त्र के विकास के लिए अभिजात्य वर्ग द्वारा स्थापित पारम्परिक साहित्य के मूल्यांकन के मापदंडों से भिन्न सामाजिक यथार्थ के आधार पर नए प्रतिमान निर्धारित किए है। संक्षेप में हिंदी साहित्य आलोचना परम्परागत शास्त्रीय सिद्धांतों को खारिज करते हुए सामाजिक यथार्थ के आधार पर निर्धारित मापदंडों को दृष्टि में रखकर दलित साहित्य की समीक्षा करती है। उचित समय पर हिन्दी दलित आलोचना के उद्भव - विकास ने हिन्दी दलित साहित्य को स्थिरता एवं मजबती प्रदान की है ।

प्रेचन्द ने 'गोदान' उपन्यास में दलितों का विद्रोही रूप दर्शाया गया है। पंड़ित मातादीन सिलिया चमारिन के तन और मन पर कब्जा कर लेता है। पहले तो वह कहता है कि वह उसे ब्याहता की तरह रखेगा लेकिन जब सिलिया सहुआइन को होली में खरीदे हुए दो पैसे के रंग के बदले में चार पैसे का अनाज दे देती है तो मातादीन सहुआइन से अनाज वापस ढेर में डलवा लेता है और सिलिया को कहता है कि तू कौन होती है मेरे अनाज से देने वाली तब सिलिया को अपनी असली हैसियत का पता चलता है कि वह मातादीन की मात्र नौकर से ज्यादा कुछ नहीं ।

तब सिलिया ने अनाज ओसाते हुए आहत गर्व से पूछा, 'तुम्हारी चीज़ में मेरा कुछ अख्तियार नहीं ?' मातादीन आँखे निकाल कर बोला, 'नहीं, तुझे कोई अख्तियार नहीं है। काम करती है, खाती है। तो तू चाहे कि खा भी, लुटा भी, तो यह

यहाँ होने वाला न होगा। अगर तुझे यहाँ न परता पड़ता हो, तो कहीं और जाकर काम कर मजूरों की कमी नहीं है। सेंत में नहीं लेते, खाना- कपड़ा देते है ।

दलित चेतना का आधार

दलित कोई एक रूपीय समाज नहीं है। इसकी अपनी अनेक परतें है। इसी प्रकार दलित आंदोलन की भी कोई निश्चित विचारधारा नहीं है। बल्कि अनेक विचारधाराएँ है । दलित साहित्य के पीछे दलित चेतना की प्रमुख भूमिका है, क्योंकि दलित चेतना से ही दलित स्वाभिमान जगता है। दलित अस्मिता की भावना बढ़ती है। दलित चेतना को विस्तार से समझाते हुए ओमप्रकाश बाल्मिकि ने कहा है, 'दलित की व्यथा, दुःख, पीडा, शोषण का विवरण देना या दलित पीड़ा का भावुक और अश्रुविगलित वर्णन जो मौलिक चेतना से विहीन हो । चेतना कर सीधा सम्बन्ध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के तिलस्म को तोड़ती है वह है दलित चेतना । दलित मतलब मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक तौर पर जिसे नकारा गया हो उसकी चेतना यानि दलित चेतना ।"साहित्य का अर्थ है समाज का दर्पण अर्थात समाज के प्रतिबिम्ब को साहित्य में उभारना ही साहित्य का काम है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य की परिभाषा देते हुए कहा है, जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहां की जनता की चितवृति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चितवृति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। लेकिन ओमप्रकाश बाल्मिकि का कहना है कि हिन्दी साहित्य में ढूंढने पर भी हमें अपना चेहरा दिखाई नहीं देता। इसी कारण दलितों को हिन्दी साहित्य की मुख्यधारा से हट कर साहित्य लिखने की आवश्यकता पडी क्योंकि हिन्दी साहित्य में उनकी परिस्थितियों को प्रकट नहीं किया जा रहा था । हिन्दी साहित्य उनके साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार कर रहा था। तभी तो दलित चेतना का उदय हुआ और दलित साहित्य अस्तित्व में आया । तेज सिंह ने भी दलित चेतना को कबीर, बुद्ध, फुले और डॉ० अम्बेडकर से जोड़ते हुए कहा है, "डॉ० अम्बेडकर ने बुद्ध, कबीर, ज्योतिबा फुले को अपना गुरू मनाकर दलित चिंतन परम्परा को ही पुष्ट किया है, जिसको ठोस जमीन पर आज दलित लेखन विकसित हुआ और जिसे आज हम अम्बेडकर वादी साहित्य कहना चाहते है। दलित चिंतन और दलित लेखन की यह लंबी परम्परा ब्राह्मणवादी चिंतन के समानान्तर विकसित हुई ।

इस प्रकार अनुसंधान करने पर पता चलता है कि दलित चेतना एक परिवर्तन का परिणाम है। दलित चेतना उस समय जागृत होती है जब दलित व्यक्ति अपने अधिकारों के बारे में सोचने लगता है, क्योंकि दलित चेतना का सम्बन्ध विद्रोह से होता है तथा जो विद्रोह होता है वह अपने अधिकारों को हासिल करने के लिए होता है। अतः हम कह सकते है कि दलित चेतना, दलित आंदोलन और सामाजिक परिवर्तन का नाम है।

दलित चेतना के दार्शनिक और वैचारिक आधार का आदि स्त्रोत गौतम बुद्ध ही रहे है। भारतीय इतिहास में बुद्ध प्रथम पुरुष रहे हैं जिन्होंने वर्णव्यवस्था के औचित्य को चुनौती दी। बुद्ध के पश्चात् सिद्धों-नाथों और उसके बाद भक्तिकाल के संतों में वर्ण व्यवस्था की पीड़ा का गहरा अहसास मिलता है। आधुनिक काल में महात्मा फुले ने संघर्ष छेड़ा। लेकिन दलित चेतना आधुनिक अर्थों में एक विचारधारा के रूप में मूलतः डॉ० अम्बेडकर की देन है । यद्यपि वे बुद्ध से प्रेरणा लेते हैं, लेकिन अपने विचार, तर्क तथा स्थापनाएँ आधुनिक धरातल पर प्रस्तुत करते हैं। जहां वे फुले से भी प्रभाव ग्रहण करते है। वर्ण व्यवस्था, सामाजिक विद्रोह, ब्राह्मणवादी नैतिकता, सामाजिक संरचनात्मक आयाम और शोषण के विरूद्ध तैयार हुई विचार, प्रक्रिया और चेतना के जनक डॉ० अम्बेडकर हैं ।

प्रमुख दलित साहित्यकार और रचनाएँ

आज भारत में अनेक भाषाओं में दलित साहित्य की रचना हो रही है । आजकल दलित साहित्य सबसे ज्यादा हिन्दी में लिखा जा रहा है। हिन्दी के दलित साहित्यकार दलित सरोकारों को बखूबी चित्रित कर रहे है। दलित साहित्य में अनुभव चिंतन की प्रधानता है। दलित लेखक बिम्ब – प्रतिबिम्ब, प्रतीक और मिथक के सहारे नहीं टिका है बल्कि अनुभव और चिंतन पर आश्रित है।

ओम प्रकाश बाल्मिकि

सदियों का संताप, बस्स! बहुत हो चुका, जूठन, अब और नहीं (कविता संग्रह), सलाम, घुसपैठिये (कहानी संग्रह), दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, मुख्यधारा और दलित साहित्य (आलोचना) सफाई देवता (समाजशास्त्रीय अध्ययन) ।

मोहनदास नैमिशराय

अपने-अपने पिंजरे (हिन्दी दलित साहित्य की प्रथम आत्मकथा), आज बाजार बंद है, क्या मुझे खरीदोगे, जख्म हमारे (उपन्यास), आवाजें, हमारा जवाब (कहानी संग्रह), बाबा साहब अम्बेडकर जीवन परिचय (जीवनपरक आलोचनात्मक पुस्तक) ।

सूरजपाल चौहान

हैरी कब आएगा (कहानी संग्रह), तिरस्कृत (आत्मकथा), प्रयास, क्यों विश्वास करूं (कविता संग्रह), मातादीन भँगी (जीवनी) ।

कॅवल भारती

तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती (काव्य संग्रह), दलित विमर्श की भूमिका, दलित चिंतन और इस्लाम (चिन्तन), डॉ० अम्बेडकर बौद्ध क्यों बने, दलित धर्म की अवधारणा, सन्त रैदास एक विश्लेपण आदि ।

डॉ० धर्मबीर

किनारे भी मझधार भी हीरामन (कविता संग्रह), नई सदी में कबीर (कबीर चिन्तन), चमार की बेटी रूपा, जूठन का लेखक कौन है (आलोचना) आदि ।

इसके अतिरिक्त श्यौराज सिंह बेचैन, जय प्रकाश कर्दम, दयाचंद बटोही, सत्यप्रकाश, कर्मशील भारती, रजनी रानी मीनू' तेज सिंह, उमराव सिंह जाटव, भगवान दास, सुभाष चन्द्र इत्यादि कई महत्वपूर्ण दलित लेखक अपनी रचनाओं से दलित साहित्य में निरन्तर वृद्धि कर रहे है।

निष्कर्ष

भारत के आधुनिक समाज की यह विडम्बना ही कही जाएगी कि लोकतांत्रिक विचारों और मूल्यों तथा समानता और भाईचारे के प्रचार-प्रसार के बावजूद जातिगत भेदभाव और छुआछुत जैसी बीमारियाँ हमारे भारतीय समाज का अपरिहार्य अंग बनी हुई है। दलित साहित्यकारों ने इसी छुआछुत को मिटाने के लिए और समाज में अपनी स्थिति की उपस्थिति दर्ज करने के लिए साहित्य का सृजन करना प्रारम्भ किया। डॉ० अम्बेडकर का यही सपना था कि अपनी

आर्थिक तंगी के बावजूद शिक्षा पर ज्यादा ध्यान देना चाहिए। आज के दलित साहित्यकारों के प्रेरणास्त्रोत है। हिन्दी दलित साहित्य को समृद्धि के शिखर तक पहुँचाने में ओमप्रकाश बाल्मिकि का सर्वाधिक योगदान रहा है। इसी कारण बाल्मिकी जी हिन्दी दलित साहित्य में सर्वोच्च स्थान के अधिकारी बने है। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि दलित साहित्य के लिए आधुनिक काल एक स्वर्ण युग है, जिससे दलितों की प्रधानता है । दलित समाज में परिवर्तन की कामना ही दलित साहित्य का अंतिम लक्ष्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

[1] एस० एल० सागर, हरिजन कौन और कैसे, सागर प्रकाशन मैनपुरी, उ० प्र०, 2001, पृष्ठ
[2] राजमोण शर्मा, दलित चेतना की कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, , नई दिल्ली, 2008, पृष्ठ – 110
[3] हरियाणा ठाकुर, दलित साहित्य का समाज शास्त्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ - 46
[4] हरदेव बाहरी, स्त्रोत, सुनीता कुशवाहा, उतर संस्कृति, दलित विमर्श और निराला, किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी, 2005, पृष्ठ - 24
[5] भोलानाथ तिवारी, स्त्रोत, अवधेश नारायण मित्र, उतर संस्कृति, दलित विमर्श और निराला, किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी, 2005, पृष्ठ – 24
[6] यशवंत रामकृष्ण दाते, महाराष्ट्र शब्दकोश, महाराष्ट्र कोश मण्डल लि० पुणे, 1935, पृष्ठ
[7] किशोर कुणाल दलित देवो भव, प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, दिल्ली, 2005, पृष्ठ – 7-9
[8] कँवल भारती, दलित साहित्य की अवधारणा, बोधिस्तव प्रकाशन, रामपुर, उ० प्र०, 2006, पृष्ठ – 15